वर सांग चढ़ो सु॥ बीर अंग कठि शस्त्र सु सोभा सरस वढ़ी सु अंग गज मद कर छोनहि॥ द्वैज कला शशि सो भि शरद सरताज मही नहि॥ सुरत दलमलीन। रल हज सुंदरि ता मोटी आर्थिन को धन देत सो घटी नाहि न छोरी॥५॥ दोहा॥ जाको जब मुष्टी नहीं होता वह न्ट पति राज॥ छोटे मोटे होत सब सोच गर्भ नहिं का ज॥ छप्पै॥ सब ग्रंथन का ज्ञान मधुर वानी जिन के मुख॥ नित अति विद्या देत मजस को पूर रह्यो सुख॥ ऐसे कवि जह बस्त रहत निरधन ता को अति॥ राजा नाहिं प्रवीन भई याही तें यह गति॥ यह बिबेकसंपति सहत सब पुरुषन में अति हीवर॥ पलकिया रतन को मोल जिन वजो हौरी कूर नर॥७॥ दोहा॥ विपता धीर संपति क्षमा सभा माहिं सुन बैन॥ जुध बिकमज न रति कथा वे नर कर गुन ऐन॥८॥ छप्पै॥ नीत निपुन नर धीर वीर कछु सुजस करौ किन॥ अथवा निंदा कीर कहौ दूर वचन छिन छिन॥ संपति हू चलिजाउ रहौ अथवा अगिनत धन॥ अबही म्रत्यु किन होउ होउ अथवा निश्चलतन॥ पर न्याय पंथ को तजत नहिं बुधि बिबेक गुन ज्ञान निधि॥ यह संग साहक रहत नित देत लोक प रलोक सिधि॥ ९॥ कुंडलिया॥ पंडित पर आधीन को नहिं करिये अपमान॥ त्रण सम संपति को गिनें बस नहिं होत सुजान॥ बस नहिं होत सुजान न पदाभर गज है जैसे॥ कमल नाल के तंतु बधे रुकि रहि है कैसे॥ तैसे इनको जान सबहि सुख सावा मंडित॥ आदर सों ब स होत मस्त हाथी जों पंडित॥१०॥ छप्पै॥ चोर सकत नहिं

चोर भारे निस पुस्ट करत ॥ अथिन हूं कों देत छिन छिन में अगनित कबहू बिन सत नाहि लसत विद्या सुगुप्रधन जिनके यह सब साज सदा तिन को प्रसन्न मन ॥ राधाधिराज छित छत्र पति यह येतो अधिकार लहि ॥ उनको निहार दृग फेर वो यह तुम को उचित नहि ॥ ११ ॥ कुंडलिया ॥ मांगे नाहि न दुष्टतें लेत मित्र कों नाहि ॥ प्रीत निवाहन इयक में न्याव वृत्ति मन मांहि ॥ न्याय वृत्ति मन मांहि उचूपद प्यारो तिनकों ॥ मानन हू के जात अकृत भावे नहिं तिनकों ॥ खड्ग धार व्रत धारि रहे कोंहु नहिं त्यागे ॥ संतन को यह मंत्र दियें कोने बिन मांगे ॥ १२ ॥ नाहर भूंखो उदर वृद्ध वैस तन छीन ॥ सिथल सुन्न अति कष्ट सों चाल हू में लीन ॥ चालिबे हू में लीन तऊ साहस नहिं छोड़ै ॥ अरु गज कुम्भ बिदार मास भक्षन मन मांडे ॥ म्रगपति भा खो घास पुरानो खात न जाहर ॥ अभिमान न में मनुष्य शिरोमन साहस नाहर ॥ १३ ॥ दोहा ॥ अम्रत भरे तन सन बचन निस दिन परतु गुन मानत पेरु सम विरलै संत संसार ॥ १४ ॥ ईश्वर अरु राक्षस रहत परवत बड़वा तुल्य ॥ सिंधु गभीर सु अति बड़ो राखत सुखसे कुल्य ॥ भूमि सयन कहु पलक पै साक हार कहु मिष्ट ॥ कह हु कथा सिर पांव कह अर्था सुख दुख इष्ट ॥ १६ ॥ छप्पे ॥ बड़ी भूमि बिस्तार सिंधु सीमा कर राखी ॥ सिंधु चार सौ कोस अवधि येतो कछु भाखी ॥ बहुत बड़ो आकाश ताहि रवि अति दिन नापत ॥ रवि हू को रथ वायु आप अपने बल ढांकत ॥ सबकी म्रजाद देखी सुनी जदपि बड़ाई हू सहत ॥ सब एक बुद्धि बिस्तार बिधि साधु रूप आमार हित ॥ २७

दोहा ॥ बदन सबही सुरन को बिधि हू की दडौत ॥ करमन को फल देत है इन को कहा उदोत ॥ लाभ संतोष दूरि के ऐसे कंचन मेरु ॥ याकी महिमा याहि में बिधि रचियो कहा हेर ॥ १९ छप ॥ कुबिद्धत मंत्री भूप संत बिन संत कुसंगतें ॥ लाड लड़ाये पूत पौत कन्या कुढंगते ॥ बिन बिध्या ते बिप्र खल खल संग क्रियेतें ॥ होत प्रीति को नाश वास पर देश करेते ॥ बनिता बिना मद हास से खेती बिन देखी हानि ॥ सुख जात अनुपम अनुराग ते अति प्रमाद तें जात धन ॥ २० ॥ लज्जा जुत जो होय ताहि सु रख ठेरावत ॥ धर्म रुति मन मांहि ताहि दंभी ठेरावत ॥ अति पबित्र जो होय ताहि कपटी कहि बोलत ॥ एखत सुरता अंग ताहि पापी कहि बोलत ॥ बिन भीत मत प्रिय बचन रक तेज वान लंपट कहत ॥ पंडित लवार कहु दुष्ट जन गुन को तजे औगुन गहत ॥ जात रसातल आहु जाहु गुन ताहु के तर ॥ परो सिला पर सील अगिन में जरो सुपरिकर ॥ सूरतन के सीस बज्र बैरिन के अरआहु ॥ एक द्रव्य बहुभांति रैन दिन धन ज्यों सरजाहु ॥ जा बिन सब गुण तिरहु सम कछु कारिज नहि करि सकहिं ॥ कंचन प्राधान सुब साज सब बिन कंच जग अकत कहि ॥ २२ ॥ जैसे काहु सांप को छबरे पकरि ध खोसु ॥ बन मांही मेल्यो सुबह दे सिर फट पर्यो सु ॥ दै सिर फुटि पस्यो सुभ पंडित अति कैदी ॥ इन्द्री बिहवल भूख पिरारी मुह से छेदी ॥ रे तू मन थिर राखि करे प्रभु ऐसो जैसो ॥ २३ ॥ दोहा ॥ कर की मारी गेंद ज्यों लागि भूमि उडि आत ॥ सत पुरुषन की विपति ज्यों छिनही

में मिलिजात ॥ २४॥
जैसे किंदुक गिर उठे ज्यों नर बरछिन दुव्य ॥ पापी दु ख सों उठत नहीं रेत पिंड ज्यों सुव्य॥ २५॥ पुत्र चरित्र तिय हित करत सुखदुख मित्र समान ॥ मन रंजन तीनों मिलें पूरब पुन्यहि जान॥ २६ ॥ सोरठा॥ स त पुरुषन की रीति संपति में कोमलहि मन॥ दुखही में यह रीति बज्र समान होय मन॥ २७॥ बिधाजुत हु होय तऊ दुष्टि तजि दीजिये ॥ सर्प जु मणिधर होय भय कारी कहा कीजिये ॥ ॥ कुंडलियां ॥ पानी पय सों मिलत ही जान्यो अपनो मित्त ॥ आप सर्यो फीको वह जल कियो सुचित्त॥ जल को कियो सुचित्त तपत जब पय को जानी ॥ तब अपनो तन वार मीत जब मन में आनी॥ उफनि चल्यौ मधि अग्नि खात जल छिरकत पानी ॥ सत पुरुषन की प्रीति रीति ज्यों पय और पानी ॥ २८ ॥
छप्पै ॥ कहत साधु कूं दुष्ट मूढ़ पंडित ठहरावत॥ करत मित्र को शत्रु अघ ताको बिध कार गावत ॥ न्टपति सभा को नाम चक्र का देवी कहिये॥ ताकी सेवा किये सकल सुख सेला लहिये॥ यह जो प्रस न्न ह्वै है नहीं तो गुण बिद्या सब अफल ॥ सुन बात चतुर नर तू यहै वासी सें ह्वै है सकल॥ ३० ॥
कुंडलियां ॥ कूकर सिर की राय रे गिरत बदन तें लार ॥ बुरी बास बिकाल तन बुरो हाल बेमार ॥ बुरो हाल बीमार हाड उलके कों चावत॥ सुरपति हू की संक नैक हू नाहिन लावत ॥ निडर महामन नाहि-

देख घुर रावत हुकर ॥ तैसीही नर नीच निलज्जज्यौं डोलत कूर ॥ ३१॥ कूकर सूके हाड़सों मानत है मन मोद ॥ सिंह चलावत हाथनहिं गीदर आये गोद ॥ गीदर आये गोद आंखि हू नांहि उघारे ॥ महामत्त गज देखि दौरिके कुम्भ बिदारे ॥ तैसेही नर बड़े बड़े सूत करत दृढ़ कर ॥ करै नीचता नीच कूरज्यों कुछित कूकर ॥ ३२॥ दोहा ॥ पापनिरावत हित करत गुन गनि आगिन ढांकि ॥ दुख में राखत देत कछु सतमित्र वह आंक ॥ ३३ ॥ माहि जल म्टग के सुत्टण सज्जन हित करजीब ॥ लब्धुक धीवर दुष्ट जन बिन कारन दुखकीव ॥ ३४॥ सोरठा ॥ तबबूंद है पीन कमलपत्र जैसी रहै ॥ मुक्तासी यह कीन थाम मान अपमान हूं ॥ ३५॥ कामन डाले खोयकोय कीये बिधि हंस पै॥ पय पानी संग होय जुदा करै नहिं॥
॥ ३६॥ बिघ्नकर ब्रिधि हर दसहु संकट शिवकर भीक॥ रावन भया नत कर्म बस करव प्रानाम शुठीक ॥ ३७ पह पगुछा सिर पर रहै कै सूके बन मांहि॥ मनलोर सन्त पुरुष रहै कष दुख घर मांहि॥ ३८ ॥ गुपचुप गोला बर बन्चन लिपट ढाट जड़ ढार ॥ क्षमा दान परिहास लसबा कष्ट दिपुर॥ छप्पै ॥ नीचे हूं के चलत होत सबेते ऊंचे अति ॥ परगुन कीरत करत आपगुन ढांकत यह मति॥ आतम अर्थ बिचार करत निश दिन परमार्थ॥ दुष्ट दूरबचन कहत छिमाकर साधत स्वारथ॥ नितरहत ये कुसम बनसों बचन कोप कर कहत॥ ऐसे जस संत या जगत में पूजा वह सब के सुलह॥ भयो लाभ

मन मांहि कहत ये औगुन चाहिये ॥ निंदा सबकी कर
त महां सब पानिकल हीये सत्य बचन कहा तप्य सु
ची मन तीरथ जानहु ॥ हाथ सजनता जहां तहां गुन
प्रघट बखान हु ॥ जस जहां कहा भूषन चहत सब बि
द्या जहां धन कहां ॥ अप जसहि छयो या जगत में ति
न्ह म्रत्य या है महां ॥ ४१ ॥
टांटि उघारे मूंड बाहू सिर पर नांही ॥ तप्यौ जेठ को धाम
बील की पकरी छांही ॥ तहां बील फल एक सी सपैं परसौ
सुवा के ॥ मानों बज्र प्रहार इन्द्रनें किया सुजाके ॥ सरव
ठौर जानें बिरम्यौ सुवह हाय इतते दुख को सहत ॥ निर
भाग पुरष जित जाय तित बैर बिपता अगनित लहत ॥
कुंडलिया ॥ मंडन हैं अस्व को सजन तासन मान ॥
बानी मंडन सूरता मंडन धन को दान ॥ मंडन धन को
दान ज्ञान इन्द्री मंडन दम ॥ तप मंडन अक्राधि बिनय
मंडन साहत सम ॥ प्रभुता मंडन माफ धम मनडन ख
ल छंडन ॥ सबहिन में सिरदार सील यह सब को मंडन
॥ ४४ ॥ उत्तम नर पर अर्थ करत स्वारथ को त्यागत ॥
मध्यम नर पर काज करत स्वारथ अनुरागत ॥ दुष्ट-
जान निज काज करत पर काज बिगारत ॥ वह नहिं जा
नै जौन रूप चौथी जे धारत ॥ निज कौन हौन निज का
ज कछु और के चारथ हरत ॥ जिन कौन होत निदरसे
छिन देह प्रभु कस सुत नहा बिन डरत ॥ दोहा ॥
जाने पर के गुन बसे बे महत पुरुष को संग ॥ बि
द्या अपनी भार्या तिन में मन को रंग ॥ तिन में मन को
रंग भक्ति शिव की दृढ़ राखै ॥ पर जवती को त्याग बचन

झूठे नहिं भाखै ॥ गुरु आज्ञा में नम्र रहै दुष्टन संगा॥ ब्रह्म ज्ञान मन माहि दमन इन्द्री सुख मानें ॥ लोकवा द की संग पुरुख तें न्रप समजानें ॥ ४७॥ छप्पै ॥ जों दरपन प्रतिबिंब हाथ में आवत नाहीं ॥ त्यों नारी न के हृदय कठिन ऊपर और मांहीं ॥ दुर्गम गिरसम चपल हित चितगति सोऊ॥ सबनारि नाम इनकों कहत बिस कुर की बेली अहै ॥ निषदोस दोषन दोष एकहा कहो अति कीअगहै ॥ ४८॥ त्रस्ना कों तजि देहु राम को भज न करो नित ॥ दया हिया में राखि पापको दूरि राखि नित॥ सत्य बचन मुख बोल सार पदवी जिय धारहु॥ सत पुरुषन की सेव नम्रता स्तुति बिस्तारहु॥ सब गुन अपने गुप्त करि करति परि पालन करहु ॥ करद या दुखी नर देखि कैं संतरीतियह मन लरहु॥ ४९॥ भयो सुकम्पित गात दंतहु उखरि परे माहि॥ आधे देखत माहि बदन तें लार परत ढह ॥ भई चाल बेचाल हाल बे हाल भयो अति॥ बचन न मानत बंध नारि हू तजी भी न गति ॥ यह कष्ट महा दिये वृध पन कछु सुख सोंन हिं कह सकत॥ निज पुत्र अनादर कहत यह बूढ़ो यों ही कहत ॥ ५०॥ हाड़ देखिकें तजत तियज्यों कोली को कूप॥ त्योंही भोरे वारि लखि बुरो लगत नर रूप॥ ५१॥ कोरज आछो अरु बुरो कीजे बहुतें बिचार॥ कीयेजल द नाहीं बनें रहत हिये में हार॥ ५२॥ छप्पै॥ चरिलस न पा मांहि तिसन की खल कोरापत॥ आक रुई के हेतु खेतके चनह लसाउत॥ कोई निजपन काज खात धन सार हि डारत॥ तैसेंही नर देह पाप बिषया बिषतारत ॥ यह

कर्म भूमि को पाय कें जे नहिं जपतपव्रत करहिं ॥ तब मूंढ़ महा नर जगत में पाय पेट सिर पर धरहिं ॥ ५३॥ दोहा ॥ बन रणाज और अगिन में गिरि समुद्र के मध्य ॥ निद्रा पद ठौरहिं कठिन पूरब पुन्य हि सिद्ध ॥ ५४ ॥ शिव विस्नू रूप जोगेश्वर सुफा भायी होव ॥ बंदन पद इन्हें अछय धर्म भाग को सेव ॥ ५५ ॥ बुड़ि समुद्र अरु मेरु चढ़ि शत्रु जीत ब्यौहार ॥ विद्या खेती चाकरी पग लिख आवी सार ॥ ५६ ॥

कुंडलिया

हिमगिर सिर धन के कहत कहा कौं मैनाक ॥ सहिवो हो निज सीस पर बुंद बंज परखाक ॥ बुंद बंज पर खाक अगिन ज्वाला में जारिवो ॥ जो को होय सब भांति वहां सन्मुख ह्वै मरिवौ ॥ डरो सिंधु के मांहि कहां लों ह्वै है थिर ॥ निलज लजायो मोहि पिता भइ जान्यौ हिमगिर ॥ ५७ ॥

छपै

सुरगुर सैनाधीस सुरन की सैना जाके ॥ सस्त्र हाथ लिये बज्र हढ़ता सो ॥ ऐरापति असवार प्रभु को परम अनुग्रह ॥ ऐसी संपति सोजु सदा सहत सुइन्द्रय ॥ सो जुद्ध मांहि दानवन सों होत पराजय ॥ खोय पति समाज समान सबही वृथा सब सों अद्भुत दैवगति ॥ ५८ ॥

दोहा ॥ दान भोग और नासती धन अन धन में जात है ॥ करत दोष की नास बास नास को तीसरो ॥

(छपै)

महा अमोलिक रत्न मांहिं सुरीस्कत तिन कों ॥
जिन की निर्मल बुद्धि सक अति ही अस्टतसो ॥

तैसें ही नर धीर काज निश्चै करि मतिहीय॥ सबदोष हित और गुन कहन ऐसे कारज मन धरत॥ ताको जु अर्थअ स्टत लहत कोऊ इष्ट को नाहि करत॥ ६३॥

कुंडलीया

राज विसे और दिवस कों रविसमतेज निधान॥ याहीं मह इन सभ नहीं ताते तजे निदान॥ ताते तजे निदा न आन इनहीं सों अरकत॥ भयो सीस को राहु चाहु कर जपतप धकरत॥ ऐसेही नर धीर मरत हू करत सु आका॥ गिरत परत रन मांहिं सुभट पहुंचत जहां रा जा॥ ६४॥

कुंडलिया

कंकन तें सोहत न कर कुंडल तें नहिं कान॥ चन्दन तें सोहत न सिर जान लेहु परजान॥ जान लेउ यह जान दान तें पान लसत है॥ कथाश्रवन तें कान सरस शोभा सरसत है॥ परमारथ सों देहु दिपत चंदन सों तंकन॥ यह सकल सबरे खिपहरिये कुंडिल कों कंकन॥ ६५॥ दोहा॥ सोही पंडित सोई श्रुतत सो गुण ज्ञ कुल वान॥ जाके धन सोई सुधर सुन्दर सूर सुजान॥ ६६॥ मान लख्यो बिधना सुलहू घटै बंधै कछु नांहि॥ सुर धर कंचन मेरु जस अंद कूप घट मांहिं॥ धेनु धरा कों चहत पय प्रजा बच्छ करि मान॥ शाकों परिपालन की जै कल्प वृक्ष समजान॥ ७१॥

छप्पै

सांची है सन भानि सदा सब बात न झूठी॥ कबहूं रै स में भरी कबहूं प्रिय बचन अनूठी॥ हिंसाकाडर ना हि दयाहु प्रगट दिखावत॥ धन लेवे की बान खर्च हू

धन को भामत ॥ राखत जु मीर बहु नरन की सदांसंवा
रत ॥ रहत न्यह भांत रूप नानारखत ॥ ७१॥

दोहा

जो अति क्रोधी भूपति काहू सोन रूपाल ॥ होमकरत
हू दरजन्यो हुती अगिन कीज्वाल ॥ ७२ ॥ दयाहीन
बिन काज रिपुतर करता पर पुष्ट ॥ सहि न सकत गु
ख बंध को यह स्वभाव सो दुष्ट ॥ ७३ ॥ विधि बिपति
दरन बरन करत धीरजहिं दूर ॥ दूर होत धीरज तजो
प्रलय सिंधु गिर पूर ॥ ७४ ॥ तिय काढा किसर कतत
छिरत ढहत को यही अंग ॥ लाभ पास खैंचित जन मन व
हू बिरले हैं जागि ॥ ७५ ॥

छपै

दया जनावत मांहि घर गये करत सुआदर हित कर ॥
साधन सात कहत उपगार बचन वर ॥ काहू कूं दुख
होत कथा वह कबहूं न भाखत ॥ सदां दान सो भी तिन्ना
तजूं संपति राखत ॥ यह खड्ग धारि रत धारि के जेनहिं
धरत बिकार मन ॥ तीन कोस वहां लोक इह में छाय
रहो जस ही रचना ॥ ७६ ॥ दोहा ॥ पत्र छीन पल्लवतरू
छीन छंद बाढ़िदार ॥ सत पुरखन को बिपति छिन संपत्त
सदां अपार ॥ ७७ ॥ धीरज गुण हार्यो चहैं ताहि ढक ज्या
न काहू डाल ॥ जैसो नीचो आखि रूख रवी निकसत
ज्वाल ॥ ७८ ॥ नस्ट होय फल भार जल जल भरन पयासु ॥
त्यों संपति कर सतपुरुष नवै स्वभाव फरास ॥ ७९ ॥
अमपि बदन हरि इता सील बन्तन धन पूर ॥ निजात
परत निसार हत वह स्वामेसूर ॥ ८० ॥ प्राणि कमुद

नि प्रफुलित करत कमल ॥ विकसत भानु बिन भोगध
न ॥ देत जल त्यों ही सत सुजान ॥ ८२ ॥ बड़े साह
सी होय सो काज करत भुकि भूमि ॥ सूर बीर औ
सूर यह लेखजात रन भूमि ॥ ८३ ॥ मिरते गिरघरको
भलो पकरिबो नारि बे नाग ॥ अगिन होत जल रूप
सिंध डाबर पद पावत ॥ होत सुमेर हु सेर सिंह हू स्यार
कहावत ॥ पहोप माल सम ब्याल होत बिष हू सम अ-
मृत ॥ वह नगर समान होत सब भांति भनो पम ॥
सब शत्रु आप पायन परत मित्र हू करत प्रसन्न चित्त ॥
जिनके सुपुन्य प्राचीन शुभ तिनके मंगल मोद नित ॥
॥ ८४ ॥ दोहा ॥ पवन बान सब अंसन सुनि सहत कौन
रिझत्याग ॥ ८५ ॥

छप्पे

चाकर हू दस बीस नाहिं जो आज्ञा राखत ॥ जात गोत
के लोग कबहूं भाज नाहिं जो चाखत ॥ अपनी निज प
रिवार नाहि बेद प्रसन्न मन ॥ तिमन ही दान देन को मि
लत नाहि धन ॥ कछु करन सकत हित मित्र को रंग राग
अरु नित्य गत ॥ ८६ ॥ बाल ततु सों बांधि व्याल वस करत
उमाहत ॥ सरस होय के हार बज्र को भेद्यो चाहत ॥ डारि
सहत की बूंद समुद्र को खार मिटावत ॥ जैसे ही छि बन
खलन के मनहिं रिझावत ॥ वह नीन्द अपने पीत जत
नहिं ज्यों भुजवा त्यों दुष्ट ॥ जल पाय पाय सुगावत पा
ग हू डसबे ही में रहत बन ॥

छप्पै

विद्या नर को रूप प्रगट विद्या सुगुप्त धन ॥ विद्या सु

ख दिस देत संग विद्या सुबुध जन ॥ विद्या सदा सहाय
देवता हू विद्या यह ॥ राखत विद्या मान लसत विद्याही
सों रहू ॥ सब भांति सबन सों अति बड़ी विद्यासों प्र-
ज्ञा कहावत ॥ शिव बिस्नु हूं विद्या बस करन नृपतन
य विद्या चहत॥ ९० ॥ साजन सों हित रीति दया परि
जन सों राखहु ॥ दुर्जन सों सठ भाव प्रीति संतन
मधि भाखहु ॥ कपट खेलन सों राखि विनय राख्यो
बुधिजन सों ॥ छिमा गुरुजन सों राखि सुरता बैरागिन
सों ॥ धूर्तता राखि जब लोग सों जो तू जग नारि बीच हो
अति ही कुशल करि काल ज इन चालन सों सुख सेरे ॥
॥ ९१॥

छप्पै

करत करनतें दान सीस गुरु चरनन राखत ॥ मुख
सों बोलत सांच भुजन सों जय अभिलाषत ॥ चित्त को
निर्मल वृत्ति एक श्रुत्त सों अति ही ॥ नैसें ही जर धीर
काज निमें कर मनाही ॥ सब दोष रहत और गुनसह
त ऐसो कारज मन धरत ॥ ताको जु अर्थ अर्दत लहत
कोऊ दुख को नाहिं मारत ॥ ९२॥ चौर धर को सीसश्रु
ति करिबे प्राक्रम ॥ सेस कमठ और भूमि कमठ धरि
रह्यो बिना श्रम ॥ कमठ शेष अरु भूमि धरा हि रह्यौ दू
रि ॥ इन सबहिन को भार एकजने आश्रित कर ॥ एक
सों एक विक्रम अधिक करत बड़ प्रथ भुव सकत ॥ ति
नके चरन हमार हित अति अचिन्त्य राखत सुव्रत ॥
दोहा ॥ करत नाहिं उपदेश कछु तोऊ करै सतसंग ॥
सत पुरुषन की बात हि देहै चित को रंग ॥ ९४॥
पुन्य परा क्रम करि सिद्धी रहत भजन के मांहि ॥ मोहा

बनिता ज्यों बिजय छांडो चाहत नाहिं ॥ छप्पै ॥
मेघा लज्जा गुरुजन की निज आया सब जानि ॥ तेजवंत
तिन कों तजत याकों तजत सम जान ॥ याकों तज तम जा
न सत्य व्रत धारे हैं नर ॥ कहुं प्रान का त्याग तजत नहिं
नेक बचन बर ॥ टेक आपनी राखि रहो बद दशरथ रा
खा ॥ बल हरचंद टेक यह जस की आशा ॥ ९६ ॥ सहभू
मि कौ भार कहौ कछु आडि बन लागत ॥ निसदिन भ
टकत भानु कहौ दुख में नाहिं पागत ॥ हरे रहत नहिं
सूर कमठ हू भार न डारत ॥ तो नर कैसे धीर बीर अप
ना या विसारत ॥ वह लेत भार निज भुजन पर नाहिं नि
बाहत हित सहित ॥ सत पुरुषन को कुल धरम संचित
करि राख्यो सुचित ॥ ९७ ॥

दोहा

सन्मुख आये शत्रु को जीत लेहु धन धाम ॥
परि बहु मस्वर्ग सुख होत प्रथम को काम ॥

कुंडलिया

कामी कबि दोऊ मिले औगुन गुनहिं समान ॥ भोग दु
रित मन धरत कबि गुन अर्थ बखान ॥ कबि गुन अर्थ ब
खान बचन कामी हित बोलत ॥ सबद बथा काम हीन
तौ ने कबि कबि हू न तोलत ॥ छिर्थई धर पदि सर सुक
बिहु मद पर गामी ॥ दोष रहत कबि लोग भजन भरि
पकरत गामी ॥ ९८ ॥

दोहा

जल धर जल बरसत अगम थु पपिहा बूंद ओ लेत
जे हा जाके भाग में ताहि न तो ही देत ॥ १०० ॥

करत उबटनो अंग न्हाय के अतर लगावत ॥ चन्दन चर चित अंग बसन बहु भांति बनावत ॥ पहर रतन की माल रतन के भूषन साजत ॥ यह नहिं शोभा देत नेक बो लत जो साजत ॥ सबही सिंगार को सार यह बानी बर सत अम्रत झर ॥ तिनहु सुनत सबन को मन हरत रंजे रहत नित न्रपति वर ॥ १०१ ॥

दोहा ॥ नीति मंजरी पढ़त ही प्रगट होति है नीति ॥ रजनि च को पर तात करी प्रतीत ॥ १०२ ॥ इति श्री मन् महाराजा धिराज राज राजे श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव विरचित नीत मंजरी सम्पूर्णम्

श्रीगणेशायनमः

अथसिंगारमंजरी लिख्यते

छप्पै

चन्द्र कला पय कान्ति वाति वहु भांति नसावत ॥ जास्वों काम पतंग विनु भयो जु परसत ॥ महा मोह अज्ञान हृदय को तिमिर नसावत ॥ अपनो आतम रूप प्रगट करि ताहि दिखावत ॥ दुति दिपत अखंडित एकरस अद्भुत अतुलित एक वर ॥ जग भगत संत चितसदन मे ज्ञान दीपजय जयत हर ॥ १ ॥

दोहा

शुभ कर्मन के उहद में गहत पञ्चित सब ठौर ॥ अस्त भये तीनों नहीं ज्यों मुकता बिनु डोर ॥

दीपक गावर विवेक ज्यों तोलों या घट मांहि
तोलों नारि कटासपट जबलों लागत नांहि
पीन लंक अति पात कुच लिय तियके दृगतीर
जे अधार नहिं करत मति धनि २ बहु धीर ॥ ४ ॥

छप्पै

करत जोग अभ्यास आप मन बस करि राख्यौ ॥ प्रेम ब्रह्म सों प्रीति प्रघट जिन ये सुख चाख्यौ ॥ तिन कोंतिन के संग कहा सुख बामन छ्है ॥ कहा अधर मध्यान कहा लोचन छबि है ॥ मुख कमल स्वास सौगंध कहा २ कठिन को परसि ॥ परमन चक्र हू जहा जोगी मनएकरस

कुंडलिया

पंडित जन तप तब कहत तिय तिवहू को बात ॥ के कर न ब्रथा बकबाद वह तजी नेंक नहिं जात ॥ तजी नेंक नहिं जात गात छबि कनक बरन ॥ कमल पत्र समनैन बचन बोलत अम्रत हर ॥ साहस मुख म्रदु हास अंग आभूषन मुदित ॥ ऐसी तिय कों को तजे के धों ऐसी पेंडित ॥

दोहा

मद गज कुंभहि सिंह सिर करत शस्त्र परिहार
मदन राज जीने जिन्हे इसी पुरुष नहीं संसार
रस में त्यों ही ऐश राजत बाप अनूप ॥
बालनि चलन विलोन में बनिता बंधन रूप ॥
नूपर किंकन किंकनी बोलत अम्रत बैन ॥
को गा मन बस करत नहीं म्रगनैनी के नैन ॥
तीन लोक तिहुं काल में महा मनोहर नार ॥
दुखहू की दाता यहै देखा सोच विचार ॥ १० ॥
कामिन कसकत सहन में मूरख मानत प्यार ॥
सहज प्रफुल्लित कमुदनी भंवरा अंधगवार ॥ ११ ॥
प्रसु काम को कामिनी जो नहिं होती हाथ ॥
तो काहू सिर न नवतो तपकर होत सनाथ ॥ १२ ॥
बन म्रगान के देल को हरे २ त्रण लेहु ॥
अथवा पीरे पान को बीरा बंधन लेहु ॥ १३ ॥
जद्यपि नारि सनीर अति जवती जन को संग ॥
तऊ पुन्य वे याप पे महा मनोहर अंग ॥ १४ ॥
नीत बचन सुन अनपतिज का जलखि भव ॥
कै तो सेवो गिर तरज के कामिन कुच सेव ॥

छप्पै

करि कारे बांके नैन कहा तू हमहिं निहारति ॥ करत छथा
ही बंद बांधि धन बसन संवारत ॥ हम बनवासी लोग
बालापन खोयो बनमें ॥ तजी जगत की आस कामना रही
न मनमें ॥ तरुण समान जानत जगत मोह जाल तोसे
तमकि ॥ आनन्द अखइत पाप हम रहे ज्ञान की छाक
छकि ॥ १९ ॥ तृस्ना सिंधु अगाध को कोऊ न पावत पा
र ॥ कामिन जोवन हीन पर प्यार न छोड़त जार ॥ २९
घटा चढ़ी सिर मोरगिर हरी भई भूमि सब ॥ बिरही दृग
डोर कहां देखि रखो जिय धूम ॥ २० ॥ (छप्पै)
अलप सार संसार कहावे बात शिरोमन ॥ ज्ञान अस्त के
सिंधु मगन के रहे बुद्धि बन ॥ नित्या नित्य बिचार
सहत सब साधन साधे ॥ के यह नौदाढार धारि उरमें
आराधे ॥ चेतन मदन अंकुस परखि सक तक कसक
त करत रिस ॥ रस मस्तक कबि लसत हंसत इन्द्र बि
धि वत वहु दिवस नित ॥ २१ ॥ पीन लेक कुच पीन नैन पं
कज से राजत ॥ भौंहैं बनी कमान चन्द्र सो मुख छबि
छाजत ॥ मद गयंद सी चाल चलत चित चोरत ॥ ऐसी
नारि निहारि हात पंडित जन जोरत ॥ अति ही मलीन
सब ठौर अति चितगति भरी अनेक छल ॥ ताको सुमान
प्यारी कहत अहो मोह महिमा प्रबल ॥ २२ ॥ कबहुं मो
ह को भंग कबहुं लीला रस बरसत ॥ कबहुं ससकत
संक कबहुं लीला रस बरसत ॥ कबहुं कि मंद मन्द हा
स कबहुं हित बचन उचारत ॥ कबहुं कि लोचन को
र चपल बहु बारनिहारत ॥ छिन चीरच सु बिचित्र क

रि कमल निमद मदन अंकुश छबि छाजत ॥ ऐसो भ्र
निपति रूप लख हरषत रहिये दिवस निशु ॥ २३ ॥

(छप्प)

करत चन्द्र छबि मंदन मंदन अंकुश छबि छाजत ॥ कम
ल न बिंहसत रैन नैन दिन प्रफुलित राजत ॥ कपट
कनक द्युति हीन अंग आभा गति उमगति ॥ अलकांत
जीते मोर कंचन कर कुम्भ किराहत ॥ मृदुता शरी
र मारे सुमन सुख सुरा सस्ट गमद करन ॥ ऐसी भ्र
भूपति रूप लखि धूप छांह नहिं गिनत मन ॥ २४ ॥
करत चतुरता मोहन मन हीन चत चितौवो ॥ प्रगट
सचित को चाव चोप से मृदु मुसकेखो ॥ दुरत मुरत
सकुचात गात अरसात जपलागत ॥ उहकत इत उत
देखि चलत बैठत छबि छाजत ॥ यह आसूषन तियन
के अंग अंग शोभा धरन ॥ अरु ऐही सस्त्र समान है
जब जन मन मृग बध करन ॥ २५ ॥

सोरठा

नहीं बिष नाहीं अमृत हूं एक लियजो जान ॥ मिलमें भ्र
मृत नदी बिछुरे बिषकी खान ॥ २६ ॥ बिहसत बरसत फू
ल से दरसत पोष अलीक ॥ परसत ही मतगत हरत रस
नी अति रमनीक ॥ २७ ॥ सुधि आए सुध बुध रहत दर
सत करत अचेत ॥ परसत मन मोहन करत यह प्या
री के हेत ॥ २८ ॥

(छप्पे)

परम भरम को भौंर सबहै गूढ़ भतु बिक्रत को सिध
कोस है दोस अरख को ॥ प्रगट कपट को कोट खेत भ्र

तीन करन को ॥ सुर पुर को बटमारन पुर द्वार नरका को महा ॥ अमृत बिस सो भरयौ थिर चर किनर सुर असुर सबके रटह बंधन करो ॥ २९ ॥ इन्द्री दम ले जाय बिनय जो लों सुभ सुत कर्म ॥ तो लों नारी नयन सर भेदत नांही मर्म ॥ ३० ॥ अधर सुधर मधु सहित मुख हतो सबन सिरमोर ॥ अब बिगरे फलन ज्यौं भया और सों और ॥ ३१ ॥

(छप्पै)

तो असार संसार जान संतोष न तजते ॥ भरि भारक भरे भूप को भूलिन भजते ॥ बुधि बिबेक निदान मान अपनो नहिं देते ॥ हुकम बिराने लाखि लाख संपति सहि लेते ॥ जो यह नहिं होती शशि मुखी म्रगनैनी केहरी कटि ॥ छबि छटी छटा कैसी छटा रस छपटी छटी लटी ॥ ३२ ॥ म्रग नैनी के हाथ अरगजा चन्दन लावत ॥ छुटत फुहारे देख पहुप सिज्या बिरमावत ॥ चौहू चांदनी मंद मंद मारत को श्रैबो ॥ बजत बीन संग गायन को सेवो ॥ चांदनी उजरे महल की निरखत चितगात हित टरत ॥ पुरुषन को ग्रीषम बिबभ भेराम्‍दन हि बिसनरत ॥ ३३ ॥ सब ग्रंथन के ज्ञान अरु नीत बान नर ॥ तिन में कोऊ कहीं मुक्ति मारग में तत्पर ॥ सब को देत बहाय कन पनी नारी ॥ जाकी वाकी मोहत चहत अति ही आनपरी ॥ यह कुबीन रकरी ॥ द के खोलन को उहकल फिरत ॥ जिन के न लगत [illegible] दृगन में तिनब सागर को तिरत ॥ ३४ ॥

। छबली तरल तरंग लसत कुच चक्र वाक सत ॥ अ[illegible]

लित आन कजवारि यह नदी मनोरम ॥
महा भयानक चाल चलत नव सागर सन्मुख॥ हा
त धरत आमनात जिनको अपनी रूख ॥ संसार सिं
धु चारत तिस्यौ तोलू पासों दूरि रह॥ जाको प्रभाव
अति ही प्रबल नैक न्हात ही जात वह ॥ ३५॥
कान निरंत गान तान सन वोही चाहत ॥ लोचन
चाहत रूप रैन दिन रहत सराहत ॥ नासा अतर च
हत सुगंध फूलन की माला ॥ तुचा चहत सुख सेज
संग कोमल तन बाला ॥ रसना हू चाहत रहत नित षा
टे मीठे चरपरे ॥ इन पंचन मिलिया अपंच सों भूपन
को भिक्षुक करें ॥ ३६॥

(सोरठा)

जो नहिं होती नारि तो तिरबो जग में सुगम ॥
यह लंबी तरवारि मारि लेत अध बीचही ॥

कुंडलिया

ऐरे मन मेरे पथिक तन जाहु दुह वोर ॥ तरुनीतन
बन सघन में कुच परबत बरजोर ॥ कुच परबत बर
जोर चोर एक तहां बसत हैं ॥ जो कोऊ वा मग जाहि
वाहि को वह ग्रसत है ॥ लूटि लेत सब माल पकरि
कर राखत चेरे ॥ मूंदि नयन और कान चस्या तू कित
कूं ऐरे ॥ ३७॥ यह जोबन धन पाय सदा सोचत सिंगा
र तर ॥ क्रीडा रसको सोत चतुरता देत रतन कर॥ नारी
नयन चकोर चोपको चंद बिराजत ॥ कसमायुध को
धाम सिंह शोभा को भ्राजत ॥ ऐसो यह जोबन पा
य के जे नहिं धरत बिकार मन ॥ बहु धरम धुरंधर

धीर मन सूर सिरोमणि संत जन ॥ ३६ ॥

कहा देखिये जोग प्रिया को अमित असंग सुख ॥ कहा सुधि ऐसोधि स्वांससोगंद हरत दुख ॥ कहा दीजिये कान आण प्यारी की बातन ॥ कहा लीजियो स्वाद अधर के अम्टत अघातन ॥ परस एक हित प को सुनत ध्यान कहाजो बनसु छबि ॥ सब भांतिस तो गुन को सदन जात सुजस गावत सु कवि ॥ ४१ ॥

जात हीन कुल हीन अध कुब्ज कुरूपनर ॥ जरा नग्नसत कसगात गलात कुष्टी और पावर ॥ ऐस धन वान होयजो आदर वाको ॥ अपनो गात बिछाय बेत रस कस जो जाको ॥ गनिका बिबेक की बेल को कदन करन वारी निरख ॥ बचि रहे बड़े कुल वंत नर पन्चतस्चत मूरख ॥ ४२ ॥

दोहा

रानका के म्टदु बाठि को कुलीन चवनकरे
नट बट बिट ठगठोठ पीक है पाचसबनको
॥ ४३ ॥

दोहा

गनिका के तनिका अगिन रूपसमुद्रमजबूत
होम करत कामी पुरुष तन मन धन आहूत

दोहा

रितु बसंत कोकिल कहु कित्यौही पवन अनूप ॥
बिरह बिपति के अरत अम्टत बिषरूप ॥ ४५ ॥

कुंडलिया

कामिनि सुआ काम का सकल अर्थ को देत ॥
मूरख वाको तजत है मूठे फल के देत ॥ मूठे फल

के देत तजत तिनकी को दाडे ॥ गढ़ि मूड़े मूढ़ वसन बिनु करि कार छोड़े ॥ भगवां करिके भेख ज दिलके जागत जामिन ॥ भीख मांगिके बात कहत हम छोड़ी कामिन ॥ ४८ ॥

(दोहा)

काम केरि भव सिंधु में फांसी डारी नारि ॥ सनी नरन की गह पन्चत प्रेम अगिन को वार ॥ ४९ ॥ स्टग नैनी हंसि रहस मंहित बन्चन सुख देत ॥ करत को उदित अति कछु अद्भुत हर लेत ॥ ५० ॥ केसरि सों अगियों सनी नयन कीनोंक ॥ मिली आन प्यारी मनो घर आयो सुरलोक ॥ ५१ ॥

कुंडलिया

केसरि चरि चित पान कुटर काठ मुक्ताहार ॥ नूपर हुनकत मचत दृग लचकत कटि सफ मार ॥ लचकत कटि सुकमार छुटी अलकें छबि छलकें ॥ उड़कत इत उत देख जुरत उघरत सी पलकें ॥ लसत हंसत सी भोंह फसत चित निरखत बेसर ॥ अद्भुत अतुलित अंग रंग सी नाहिन केसर ॥ ५२ ॥ दोहा ॥

अरुन अधर कुच कठिन दृग भोंह चपल दुख देत ॥ सुथिर रूप रोमावली ताप करत किह हेत ॥ ५३ ॥ मनमें कछु बातन कछु नैनन में कछु और ॥ चितकी गति और ही यह प्यारी केहि हेतु ॥ ५४ ॥

छप्पै

बिन देखे मन होत याहि नीके करि देखे ॥ देखे ते मन होत अंग आलिंगन पेखे ॥ आलिंगिन ते होत याहि तनमय

कर राखै ॥ जैसे जल और दूध एक रस ह्वै अभिन रहै ॥ मिलि रहे तोऊ मिलिबो चहत कहा नाम या बिरह को ॥ बरनो न जात अद्भुत चरित्र प्रेम पाट की गिरह को ॥ ५८ ॥ खुले केश चहुं ओर फैल फूलन को बरसत ॥ मद २ छाके नैन सुरत उधरन से दरसत ॥ सुरत खेद के खेत कलिन सुन्दर कपोल गहे ॥ करत अधर रसपान परम अमृत समान तांहि ॥ वह धन धन सुकृती पुरुष जो ऐसे उट्ठे रहत ॥ हित भरे रूप जुबना भरे ह्वै पाल सुख संपत लहत ॥ ५९ ॥

कुंडलिया

जै है नहिं जो पथिक तू भादों में निज भौन ॥ तो तिय जियत न पाइये करि जैहे निज गौन ॥ करि जैहे निज गौन पीर परवाई आयें ॥ मोरन को सुनि सोर घोर घन के घहरायें ॥ देखत फूले फूल फूल फूले लहराये हैं ॥ चपला चमकत चाह आह कर करि मर जैहै ॥ ६० ॥ दोहा ॥ गेह २ कहा होत हैं जो वह जीवत नाहिं ॥ जीवत है तोऊ कहा धरा चढी नभ मांहि ॥ ६१ ॥ जो न होत सुख परस पर बिहरत सुरत समाज ॥ तो वह दोऊ करत हैं काम निवाहन काज ॥ ६२ ॥ छप्पै ॥ नाना कहि गुन प्रगट करत अभिलाख ज़ुत ॥ सिथल होय घर धीर प्रेम की इच्छा करि उत ॥ निर्भय रस को खेत सेज रन खेत हि मांही ॥ क्रीडा मांहि प्रवीन नारि सुखिया मन मांही ॥ अह सुरत मांहि अति ही सुरति करत हरत चित गात ढरे ॥ कुलवधू कामनी केलि के कल काम की सब ढरे ॥ ६२ ॥

दोहा ॥ जौलों नारी नयन ढिंग तौलों अम्रत बेल ॥ दूर भये तेज रू सम लगत बिरह की सेल ॥ ६४ ॥ कामिन हु की काम यह नैन सैन अगठान ॥ तीन्यौ लोक जीत्यौ मदन ताहि करत निज हान ॥ ६५ ॥ मंत्र दवा औषधीन ते बेद न मिटै न बेद ॥ काम कान सों म्टद मन कैसे मिटि है खेद ॥ ६६ ॥ दीप अगिन मन्य चंद्र माज गमग ज्योति सुदार ॥ म्टग नैनी कामिन बिना लगत सबै अंधियार ॥ चन्द्र कान्ति सम मुख लसत नीलम के सहि पास ॥ पुराय राग सम करल सों नारी रत्न प्रकाश ॥ ६८ ॥ भौंहै काली कुटिल अति हैं नागिनी समान ॥ कसत लसत ऐसी मनो फन कर दौरत षान

(छप्पै)

केश राहु समजानु चंद सो सोहत आनन ॥ द्वादश मैं द्वै और नेन के तेहि अल कानन ॥ मंद हास हैं शुक्र बुद्धि वानी कर जानो ॥ सुर गुर जानो राज करन मंगल हिं बखानो ॥ अति मंद चाल सोहे मंद गति महा मनोहर जुबति यह ॥ सब ही फल दायक देखियत जाको सेव तनो गिरह ॥ ७० ॥ दोहा ॥

अति अद्भुत कमनेत तिय कर में बान न लेत ॥ देखौ यह बिपरीत गति गुनते बेदत चेत ॥ ७१ ॥ छप्पै ॥

अनुरागी जग मांहि एक संकर सरसाने ॥ पारवती अरु धए हुत निस दिन लपटाने ॥ बीत राग हू भये एक श्री जिन जिब देव बर ॥ तजो तियन को संग सदां तपसी में ततपर ॥ जड़ जीव और या जगत के मदन महा ठग के ठगे ॥ नहिं बिषम भोग नहिं जोग हू योंही जी

तत डगमगे॥ ७२॥ मंत्र दवा औषधीन तें तजत सर्प बिषलाग॥ यह क्यों हुं उजरत नहीं नारनयन को नाग॥७३॥ बिछुरन ही में मिलन हो जो मन मांहि स नेह॥ बिना नेह के मिलन में उपजत बिरह अछेह॥ नारी नागिन नैन ले डसत दूरते मित्र॥ जतन करत ज्यौं ज्यौं बढत बहु बिष अति ही बिचित्र॥७६॥ को तेरे चित चरपटी शोभा संपति पाय॥ पुन्य पात्र को परखिके करे क्यौं न मन लाय॥७७॥ बिरही जनम न तप करे बन अबला सोरे॥ धिगहू पंचम टेरिये बरिये किय बोरे भोरहिं मन नाय उदे पाडल के महकत॥ फूलन लगे पलास दसो दिश दोषहु दहक॥ मलियागिर सी पवन हु काम अगन प्रफुलत करत॥ बिन कंत बसंत असंत ज्यों चोरि रहो कहि नहिं टरत॥७८॥

दोहा

दमकति दामिन मेघ इत केतक पहुप प्रकाश॥ मोर सोर स दिनन में बिरही जनमन त्रास॥७९॥ नबतरुनी रति चतुर बिजय काम को देत॥ अक्षत करत बिलास पहा कछु अक्षत हरलेत॥ ८०॥ कोकिल फल को कीलता चैत चांदनी रैन॥ प्रिया सहत निज महल में सुकती करत सुचैन॥८१॥ शशि बदनी अरु कामशशि चन्दन पहुप सुगंध॥ ए रसिकन के मन हेर तनके चित बन्द॥८२॥ सधा अधम नभ जल दामिन दमकत दुरात॥ हरष शोक दोऊ करत तिया कोप दिग आत॥

छप्पै

संजत एख केशन पनहूं कामन चारी॥ मुखहू मांहि प

चित्र रहत ठान सवारी ॥ ऊपर मुक्ता हार रहत निसदिन छुव छाये ॥ आनन चन्द उदास रूप उज्जल सरसाये ॥ तेरो तन तरुनी मृदुल अति चलत पाल धीरज सहित ॥ सब भांति सती गुण को सदन तऊ करत अनुराग चित ॥ ८४॥

(दोहा)

तबही लों मन मानिये तबही लों मन मानियें तबही लों भृमंग ॥ जौलों चन्दन सों मिलो पवन परसत अंग ॥ पान पयोधर को चलत अंगठ करत है काम ॥ पावस अरु प्यारी निरखि होत तमाम ॥ नव बादर अरु जीव हरकूं तज कदंब सुगंद ॥ पोर शोर रमनीक बन सब को सुगंद ॥ ८७॥ यहा माह में सीत इते पै जल धर बरसत ॥ मन्दलन बाहर पाद परत नहीं अति ही दरसत ॥ रूप होत जब गात तबही प्यारी तबही प्यारी संग सोवत ॥ उठत अनंग तरंग अंग में अंग समोवत ॥ रिबि खेदि २ के छेदन करत जा लरिंध आवत पवन ॥ इहि भांति बिताछ दूर दिसा बनज सुक्रीत सुख के भवन ॥ ८८ ॥

(छप्पे)

छाके मदन छेके के छाक मदरा के छाके ॥ करत सुरत रन रंग जंग करि कछु एक थाके ॥ पौढ रहे लिपटाय अंग अंगन में उर हूं ॥ बहुत लगी जब प्यार तबही चित चाहत सुर है ॥ उठ पियत रात आधी गये सीतल जल या सरद को ॥ नर धन्य बंत फल लेत निज सुकृती फरद को ॥ ८६॥ दोहा ॥ जिनके पाहे मत में तिथान तन लिपटाय ॥ तिन काज मन के सदन की आगत

सोरठा

दही दूध घृत पान बसन मजीठहिं रंगके ॥ आलिंगन रति दान केसर चरचि हिमंत में ॥ ९१ ॥ खिलकुल करत सुकेसन पनही छिन मुदित ॥ बसन न अबें लेत देह रोमांचन रूखत ॥ करत हृदय को कंप करत मुख हू सो सीसी ॥ पीड़ा करत है बीठ व परह नारि नारि सरिसी यह सीत कलि सें जानिये अद्भुत गत धारत पवन ॥ निस दीस रे रवके रहो निज नारी संग निज भवन ॥ ९२ ॥ चुवन करत कपोल सुखसहिकार करावत ॥ हृदय मांहि धसि जात कुचन पर प्रेम बढ़ावत ॥ जपन को यह रात बसन हाटरी करत उकि ॥ स्त्री रहत है संग क्षार को कहा करै घड़िक ॥ यह सिसर पवन पर रूप धरि गलिन गलिन भटकत फिरत ॥ मिलि रहे नारि नर भवन में याकी भट भेरन भरत ॥ ९३ ॥

दोहा

जो जाके मन भावतो ताको तासों काम ॥ कमल न चाहत चांदनी बिगसत परसत भान ॥ ९४ ॥ बासकीजिये गंगतट पाप निवारत डार ॥ के कामिन कुच जुगल कों सेवन करत विचार ॥

कुंडलिया

जैसे सुख दुख रहत हैं गुर अन्त्या में ध्यान ॥ त्यागकिये संसार कों ब्रजनिधि भक्ति अनान ॥ ब्रज निधि भक्ति अन्यन गुफा हेमाचल सबै ॥ कुच कठोर नार वहै जीवन न बिलवे ॥ तप करि जीवन छीन किये सुखही मेंहै वह ॥ दोहा ॥ यह प माल पषाव पवन चंदन चंद सुढारि ॥

मृगनैनी कामिन बिना लगत सबै अंधियार ॥ ९८ ॥ अधरन में अम्रत बसै कुच कठोरता बास ॥ ताते इन को तेल रस उनको मरदन कास ॥ ९९ ॥ जैसे रोगी पत्य को पापो जानत नाहि ॥ तैसी ही तिय सुखनिरखि रुचि मानत मन मांहि ॥ १०० ॥ महामात इहि प्रेम को तबतिय करत उदोत ॥ तब बाके छल बल निरखि बिधिहू का घर होत ॥ १०१ ॥ का काहू के बैराग रुचि काहू कू रुचि नीति ॥ काहू को सिंगार जुदी २ यह रीति ॥ १०२ ॥ इति श्री महाभारताधिराज राज राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव बिरचित सिंगार मंजरी सम्पूरण ॥ शुभम् ॥

श्रीगणेशायनमः

अथ वैराग्य मंजरी लि

ख्यते

सोरठा

सर्व दिशा सब काल पूरि रह्यौ चैतन्य घन ॥ सदा एक
रस चाल वेदन वा पार ब्रह्म के ॥ १॥ छप्पै ॥ पंडित में
छीनता भरे मूर्ख भरे अभिमान ॥ और जीव या जगत
के मूरख महा अज्ञान ॥ मूरख महा अजान देखि के संकट
सहिये ॥ छन्द प्रबंध कविता काव्य साका सो कहिये
बुद्धि भई मन माहि मधुर बानी गुन मंडित ॥ अपने
मन को मारि मौन गहि बैठे पंडित ॥ २ ॥ या जग सों उ
त्पन्न भजे जे चरन मनोहर ॥ ते सब ही छिन भंग प्रगट
यह पूरि रह्यौ डरि ॥ ब्रह्मा दिक तें स्वर्ग गये तेऊ भय मा
नत ॥ इन्द्र आदि सब देव अवधि अपनी को जानत
फल भोग करत जे पुन्य को तिनकों रोग वियोग भय ॥
दुख सकल सुख देखि को भय संतति जन ज्ञान भय ॥
सहि गार और खीज हात हारत घरि आयौ ॥ कूर
स्वान ज्यों पारि घर खायौ ॥ इह भांति न चार नें मोहित वह
कायौ ॥ दे लोभ भल ॥ अजहुँ न ताहि सराप कहु तृषा
तु पायन प्रबल ॥ ॥ ४॥ खोदत डोल्यो भूमि गढ़ी कहां
पावति संपति ॥ धौंकत रह्यौ पखान कनक के लोभ

लगी मति ॥ गयो सिंधु के पास तहां मुक्ता नहिं पायो ॥ कौडी कर नहीं लगी न्रपत को सीस नवायो ॥ साधे प्रयोग समसान में बैताल भजि ॥ अजहुन तोहि संतोष कहु अब तो तृस्ना मोह तज ॥ ५॥
एहे खलन के बैन इले पै मनहिं रिझायो ॥ नैनन को जल रोकि सु मन मुख मुस्कायो ॥ देत नहीं कछु वित तऊ कर जोरि दिखाये ॥ कीरि२ चाव के फेर भोर ही दोरत आयो ॥ मन आस पास तेरी प्रबल तू अद्भुत अति गहन ॥ इहि भांति नचायो मोहि अब और कहा कियवो चहत ॥ ६॥ उदे अस्त रवि होत आप को छीन करत नित ॥ मह अंधे के मांहि समय बीतन अजान चित ॥ आखों देखत जन्म जरा अरु मरण बिपति हू ॥ तोऊ डरत नहिं नैक नैन हू नायक करण हू ॥ जग जीव मोह मदरा पिये छाके फिरत प्रमाद में ॥ सब गिरत उठि२ फिर गिरत बिषय वासना स्वाद में ॥ ७॥
फाट्यो पुरानो चीर ताहि खैंचत और धारत ॥ छोटे मोटे बाल भूख ही भूख पुकारत ॥ घर मांही नहिं अन्न नाहिं यू दिट्य यातें ॥ भई महा जड रूप कछू मुख कहत न बातें ॥ यह दशा देखि अखरत चित जीव लरथरु कत सुरस ॥ आप नजर पानु दर हित देह कहत को सत पुरुषन ॥८॥ भागी भोग की चाह गयो गौरव गुमान सब ॥ मित्र गये सुरलोक अकेले आप रहे आप रहे अब ॥ उठत लाकरी टेक तिमिर आंखन में छायो ॥ खबर सुनत नहिं तऊ चकित होत माखी सुनत ॥ देखो बिचित्र गति जगत की दुखहू को सुखसों लुनत ॥ ९ ॥

बिनु उद्यम बिनु पाय पवन सर्पन को दीनो ॥ तैसे ही सब ठौर या सप सुवन को कीनो ॥ जिनकी निर्मल बुद्धि निरन भवसागर समरथ ॥ तिनके दूबर वृति हरन गुन ज्ञान ग्रंथ मत ॥ बिधि अबिधि करत अधिकरम ति गार्ते नर पर घर फिरत ॥ निस द्यौस पचत तन मन तचत लचत रचत उरझित गिरत ॥ २०॥
बिधि सों पूजे नांहि पाय प्रभु के सुखकारी ॥ प्रभु को धर्यो न ध्यान सकल भव दुखको हारी ॥ खोले स्वर्ग कपाट धमाहू कियो न ऐसो ॥ कामिन कुच के संग रंग भर रह्यो न तैसो ॥ हरि हाय कीन्यो कहा बाप पदारथ नर जनम ॥ जननी जोबन दहन को अगिन रूप अग ह सुहम ॥ २१ ॥
भोग रहे भरि पूर आयु यह भुगत गई सब ॥ तप्यो नाहि तब मूढ़ अवस्था बीत गई सब ॥ काल न बितहू जात बैस यह चली जात नित ॥ छुद्धि भई नहीं ग्रास बुद्धि व्यय भई छांह हित ॥ अजहों अचेत चित चेत करि देह गेह सों नेह तजि ॥ दुःख हरन मंगल करन श्री हरि के चरन भजि ॥ २२ ॥
छिमा बिन कीन छिमा बिन संतोष न जे सुख ॥ सहे सीत धुत बिना धर्म तपे पाय महा दुख ॥ धर्यो बिष य का ध्यान चन्द्र से बरनाह धायौ ॥ तज्यो सकल सं सार प्यार जब उन बिसरायौ ॥ मन करत काज सो ठीक रे फल देखत बिपरीत श्रुति ॥ अबलौ कहा चिन्ता कियेअ जहों करि हरि चरन रति ॥ २३ ॥ खेद्धार बिन दसन बितु बदन सज्यो ज्यो कूप ॥ गाल सूखे थिथलत भयो वो दशा

न रूप सुवरूप ॥ १४ ॥ इक अंबर के इक को विसमें बोढ़त चन्द ॥ दिन में बोढ़त नाहि रवि तू कों करत छुहंद ॥ २५ ॥

छप्पै

जे वे वारे भोग कहा जो यह विधि विलास ॥ सदा सर्वदा संग रहत नहिं क्यों हू सिसे ॥ तौ तौ तजि हो नाहि आप भी यह उठ जैहै ॥ तब होइहै संताप अधिक चिन्ता हु इ है ॥ आत जे आए यह विषय सुख तो सुख होत अनंत अति ॥ दुस्तर अपार भव सिंधु के पार होत यह विमल मति ॥ २६ ॥ दुवरो कारो हीन अवण विन पूछ न कापो व हो बिकल बिकल शरीर वार बिनु छार लगावे ॥ रूरत सास तें राधि रुधिर कृम झरत डारत ॥ सुधी छीन अति दीन गरीना कंठ किरोलत ॥ यह दसस्वान पाई इतऊ कुतिया सों उरूत गिरत ॥ देखो अनीत या मदन को स्तक न को मारत फिरत ॥ २७ ॥ भीष अंत इकबार लों न बिन खाय रहत हो ॥ फाटी गूदरि ब्रह्म की छांह गह त हो ॥ घास पात कछु डार भूमि पै नित अति सोवत ॥ ए रव्यौ तन परिवार ताको यह होवत ॥ इह भांति रहत चा हत न कछु तऊ विषय बाधा करत ॥ हरि हाय हाय तेरी संरन आय परो इन सों डरत ॥ २८ ॥ कुच अमिष की गांठि कनक के कलस कहत कवि ॥ मुखर कष्ठ को धाम कहन शशि के समान छवि ॥ झरत मूत्र औ र धात भरी दुर्गंध ठौर सब ॥ ताको चंपक बेलि क हत रस रत ठेलदेव ॥ यह नारि निहार निंदित सदै उह के विषई बावरे ॥ वांके बढ़ायवे को विरद बो ले बहुत उतावरे ॥ २९ ॥

जानत नाहि पतंग पवन को तज भई कम ॥ गिरत रूप को देख जरत अपने अबिबेकन ॥ तैसे ही यह मान मास को लोभ लुभायो ॥ कंटक जानत नाहि न्याय वह कंठ छिदायो ॥ हम जानि बूझि संकट सहत छांड़ि सकत नहिं जगत सुख ॥ यह महा मोह महमा प्रबल देत दुहन को दोष दुख: ॥२०॥

दोहा

धूमि समन बल कल बसुन फल भोजन पाठ पान ॥ अब मेरे इन न्टपति सों रह्यो नाहि कछु काम ॥ २१॥

छप्पै

भये जगत में धनि धार जिन जगत रच्यो है ॥ कोऊ धारो ताहि सुनो नहिं नेक लच्यो है ॥ काहू दीन्यो दान जीत काहू बस कीन्यो॥ भवन चतुर्दश भोग करयो कहा जस लीनो ॥ एक अधिक भरा तुम हो तिन में तुछ बित ॥ दस बीस नगर के न्टपति ह्वै यह मद धीज्वर तोहि कित॥ २२॥

तुम प्रथ्वी पति भूप भरे अभिमान बिराजत ॥ हम पाय गुरुन के गेह बुद्धि ताके बल गाजत ॥ तुम धनसों बिख्यात सुकबि गावत के पावत॥ हम जस सों बिख्यात रहत निस द्यौस बढ़ावत ॥ तुम हम बीच अंतर बड़ो देखो सोच बिचार चित॥ ऐते पर जो मुख फेरि हो तो हम कों एकात हित ॥ २३॥

छिनही छांडी नाहि भोग भुगती वह भूपन ॥ कुलदासी यह भूमि शाभ मानत महीप मन॥ ताहू कई के अंगहि पावत॥ राखत हैं कष्ट रैन दिन रहत बडा

वत॥ अपनी और की हाथ वह याते नर पन्डित रहै ॥ दृढ़ ज्ञान गोपीचन्द से बुरी जान के बचि रहै ॥ २४ ॥ इक म्रतिका को पिंड रहत जल मांहि निरंतर ॥ सोऊ सबही ताहिन लकसों ता में डड़ करत हजारन भूपजन तब करत भोगधित ॥ मिटत न अपनी प्यास सनको कोन कहा चित ॥ ऐसे दरिद्र पुरुष के भरे तिनह सों जो बहुत धन ॥ अक जन्म अस अधम को सदा सर्बदा मलनमन ॥ २५ ॥ दोहा ॥ नर भर बिट गांयक रही नहीं बासिन के साथ ॥ कोन भांति न्टप हम मिलें तर नी हो हम नाहि ॥ २६ ॥ ऐसे हू जग में भये मुंड माल शिव कीन ॥ धीन धीनो नर नवन लगि तुम को सद ज्ञर लीन ॥ २७ ॥ भीख असन और हग वसन फल भोजन तरु धाम ॥ अब मेरे हून न्टपन रहो ना कोई काम ॥

छप्पै

तुम अवनी के ईस ईस हम हो वानी के ॥ तुम हो रन में रन में धीर सीर गाढ़े मतिजी के ॥ न्याही विधा बाद करत हमहू नहिं हारे ॥ अत पाछे को मन मार आय ना बिस्तारे ॥ धन लोभी नर सबे तुम्हें हम को सिष सोता ॥ भले तुम को न हमारी चाहतो हमहू यहां से उठि चले ॥ २८ ॥ जबही समभो नेक तबही सर्वज्ञ भयो है ॥ जैसे गज मद मत्त अंधता छांड गयो है ॥ तब सत संगत पाय कछुक हू समभन लाग्यो ॥ तबही भयो है मूढ़ भर्म गुन को सब भाग्यो ॥ ज्वर व ढ़ता भनि ता पूजो उत्तरत सीतल होत तन ॥ त्योंही मन को मद उत्तर लियो शील संतोष मन ॥ ३० ॥

तूहीरीझत क्यों नहीं कहा रिझावत और ॥ तेरे ही आ नन्द तें चिंता मन सब ठौर ॥ ३२ ॥

कुंडलिया

जैसे चंचल चंचला त्योंही चंचल भोग ॥ तैसे ही य ह पाप है ज्यों घन पवन अयोग ॥ ज्यों घन पवन अयोग तरलसोई जवान तन ॥ जिससरल गल बार गनि हू जात ओसकन ॥ देखौ दुसह दुख देह धारन के ऐसे ॥ साधत संत समाध व्याधि सों छूटत जैसे ॥ ३३ ॥ पंकज पत्र पर चंचल बूंद आल ॥ त्योंही चंचल प्रान हू तजि जैहै निजगात ॥ जाँजै है निजगात बात यह मोकों जानत ॥ तोऊ छांड़ि वि वेकन्ट पन की सेवा ठानत ॥ निजगुन करत बखा न निर्लज्ता उघरी ऐसे ॥ भूलि गयो निज ज्ञान मूढ़ संसारी तैसे ॥ ३४ ॥

न्टपति सैन संपति सचिव सब कालिन परिवार ॥ करत सबन कों स्वप्न समन मौ काल करतार ॥

छप्पै

जोजन में हम संग सुतो सब स्वर्ग सिधारे ॥ जो खेले हमलार काल तिनहूं कूं मारे ॥ हम हू जर २ देह निकट ही दीसत मरिवे ॥ जैसे सरता तीर वृ- क्ष को तुरत उखरिवो ॥ अजहू न छांड़त मन उम गि जरमौ रहोत ॥ ऐसे अन्त के संग में माया जगत की दुख सहत ॥ ३६ ॥ सर्प सुमन को हार उ लबैरी उगबैरी और साजन ॥ कंचन मणि और लोह कसम ज्यों अह पाहन ॥ ऐसी तरुणी नारि-

दोहा

ब्रम्ह ध्यान धरि गंगा तट बैठो गौतम जि संग ॥ कब हु वह दिन होयगो हिरन खुजावत अंग ॥ ३८ ॥

जग के सुख सों दुखित हैं भरहैं ढरहैं नैन ॥ कब रटिहों तट गंग के शिव शिव आरत बैन ॥ ३६ ॥

ईश शीश तजि स्वर्ग तजि गिरवर तज उतंग ॥ अवनी तजि जलदहि मिली परदसों पर सुख गंग ॥ ४० ॥

छप्पै

नदी रूपयह आस मनोरथ पुरिरह्यो जल ॥ त्रस्मान ल तरंग राग है ग्राह महाबल ॥ नाना तिनके बिहंग संग तरु तोरत ॥ भूमर भ्यानक मोह सघन को गाहि गाहि बोरत ॥ नितबहुत रहत चित भूमैं चिता तट अति ही बिकट ॥ कढि गये पार जोगी पुरुष जिन पायो सुख तट निकट ॥ ४१ ॥

दोहा

ऐसो या संसार में सुन्यो न देख्यो धीर ॥
बिषीया हथनी संग लग्यो मन गज बांधे धीर ॥

कुंडलिया ॥ छोटे दिन लागत जिन्हे जिनके वह बिध भोग ॥ बीतजात बिलसत रहत करत सुरत संजोग ॥ करत सुतन से जोगतनक से जिन को लागत जैहीं ॥ सब गदान जिन्हे दीरघ है दागत ॥ हम बैरी त्यग भग याही ते मोटे ॥ सदा एक रस द्यौस लागत हैं बडे न छोटे ॥ बिद्या रहत कलंक नाहि चित में नहिं धारी ॥ धन उपजायो नाहि सदा संगी सुख कारी ॥ मात पिता की सेब सुश्रुतपानेक न कीनी ॥ स्दगनैनी

नव नारि अंक भरि कबहुन लीनी ॥ यों ही बितीत कीनो समय ॥ ताकत डोल्यौं काकतो ॥ ज्यौं भज्यौ रंक पर हात तें चंचचौंर चालाक ज्यों ॥ ४४ ॥ बीतगयो सर बरषत तरुणा करुणा छाई हिय ॥ बिना सार संसार अंत परिणाम जानि जिय ॥ अति पवित्र और एध सरद के चन्द सहत निस ॥ करि हां तहां बिती त प्रीतिसों हर्षि रसों दिस ॥ सब विध त्याग बैराग धारि गंगाधर हर २ कहत ॥ ४५ ॥

छप्पै

तुम धन सों संतुष्ट तुष्ट हम छस वकलतें ॥ दोऊभये समान नैन मुख अंग सकलतें ॥ जान्यौं जात दरिद्र बहुतत्रस्ना है जिनकें ॥ जिनके त्रस्ना नाहि बहुत संपति है तिनकें ॥ तुमहीं बिचार देखो दृगन को निरधन धनवंत ॥ जुत पापको को असंत अरु संत को ॥ ४६ ॥ दोहा ॥

सत संगत सुत्रस्ना बिना क्रपणता मच्छ ॥ कहा जानों किह तप कियों यह फल होत प्रतिच्छ ॥ ४७ ॥

छप्पै

भोजन को करि पत्र दसों दिसा बसन बनाये ॥ भये भीख को सैन पलंग पृथी परछाये ॥ छांडि सबन को संग अकेले रहत रैन दिस ॥ निज आत्मा सों लीनपीन संतोष छिन छिन ॥ सन्यास धन कियें कर्म निर्मूल जिन ॥ ४८ ॥ दोहा ॥ न्टप सेवा में तुच्छ फल बुरी काल की व्याधि ॥ अपनी हित चाहत कियौं नृ तो तप आराध ॥ ४९ ॥ सोरठा ॥ बिप्रन के घर जाय भाव भागिबो हैं

भलौ॥ बंधुन के सिरताज भोजन हू करिबो बुरो ॥५०॥

छप्पै

अगाध करल दुखदोष बिषभरे बिषय भोग सुख॥ इन सों परसों परसुखै ही सबही मनमुख॥ ऐरे चित्तच लाक ध्यान तेरे तू तजिरे॥ बैठि ज्ञान की गोख सुमति पटरानी सजिरे॥ छिन भंगजाल की बोर तू जित टरकावै मोहि अब॥ संतोष सत्य अभ्यास हित समदम साधन सब॥५५॥ दोहा॥ बकल बसन फल असन करि ह्वो बन बिश्राम॥ जित अबिबेकी नरन कौ सुनियत नाहीं नाम॥ ५६०॥

छप्पै

मोह छोड़ि मन मीत प्रीति सों चन्द्रचूड़ भजि॥ सुरसरिता के तीर धीर धरि दृढ़ आसन सजि॥ समदम जोग बिरोग त्यागन कौ तू अनुसारे॥ रथा बकै बकबाद स्वाद सब ही तू परिहरि॥ तिर नहीं तरंग बूंद बूंद सदृश हू आत है॥ सुख कहो कहा इन नरनकूं जासों फूलत गात है॥ ५७॥ छहो रागनी राग सुनी गावनि है निस दिन॥ कबिजन पढ़त कबित्त छन्द छप्पै छिनहीछिन॥ लिये दुहु धा चौर करत ढारी सब नारी॥ दुहन कमन क धनि होत लगत कानन को प्यारी॥ जो मिलै तोहि यह साज तो तू करि संसार रति॥ नहिं मिलै इतहू ताहि सो साधत क्यों न समाधि गति॥ ५८॥

छप्पै

महल महा रमनीक कहा बसिबे नहिं लायक॥ ना

हित सुनवे जोग कहौ ॥ गावत गायक नाहि न सुन वे जोग कहा जो गावत गायक॥ नव तरुनी को संग कहा सुख उनहिं न लागत ॥ को काहे को छांड़ि छांड़ि यह बन को भाजत ॥ इन जान लियो जगत को जैसे दीपक पवन में ॥ लगि वात तुरत बुझ जात है थिर रहत नहीं निज भवन में॥६०॥ दोहा ॥
भये नाहिं सबही भलाय कंद मूल फल फूल ॥ कृपणमद माते नृपन की सेवा करत कबूल ॥ ६१॥ गंगा तट गिर वर गुहा वहां कहा नहिं ठौर ॥ कृपण ते अपमान सों खात पराये कौर ॥ ६२॥
एका की इच्छा रहत धाणी पात्र दिग वस्त्र ॥ शिव २ ।कहिवो होउ गो कर्म शत्रु को शस्त्र ॥ ६४॥ इन्द्र भये धनपति भये भये शत्रु के साल ॥ कल्प जिये तोऊ गये अंत काल के गाल ॥ ६५॥ मन निरक्त हर भक्त जुति सु यौवन त्यगाडाम ॥ याहि तें कछु और है परम अर्थ को लाभ ॥ ६६॥ अहा अखंडा बरष सुमरत क्यों न निसंक ॥ जाके छिन संसर्ग ते लगत लोक पति रंग॥ ६७॥ कुंडलिया
फांदो तें आकाश पै कोसो तू पाताल॥ दसों दिसा तू फिरो ऐसी चंचल चाल॥ ऐसी चंचल चाल इते कब हूं नहिं आयो ॥ बुद्धि सदन को पाय ज्ञान छिनहूं न छिवायो ॥ देख्या नहीं निज रूप कूप अमृत को छायो ॥ ऐरे मन मत मूढ़ क्यों न भवसागर फांदो ॥ ६८॥ वेही निस वेही दिवस वेही तिथि वह वार ॥ वेही उसम वही किया वह ही बिषय बिकार॥ वेही बिषय

विकार सुनत देखत और संघत ॥ वेही भोजन भोग जाग सोवत अरु ऊंघत ॥ महा निलज यह जीव मोह में भयो विदेही ॥ आजहु आटत नाहिं कहत गुनवेके वेही ॥ ६९ ॥ प्रथ्वी परम पुनीत पलगना को मन मा ख्यो ॥ तकिया अपनो हाथ गगन को तम्बू तानों ॥ सहित चन्द चिराक बिजुवा करन दसों दिस ॥ बनिता अपनी वृति संग हार हित दिवसनिस ॥ अतुलित अपार संपति सहत सोहत हैं सब में मगन ॥ मुनिराज महा न्टप राज ज्यों पौढ़े हमदेखे दगन ॥ ७० ॥

सोरठा

कहा विषय को भोग पर भोग इक और है ॥ ताके होत संजोग नीरस लागत ॥ ७१ ॥ छप्पै ॥

साधे सब शुभ कर्म स्वर्ग को बास लह्यो तिन ॥ करत तहांहू चाल काल को व्याल भयंकर ॥ ब्रह्मा और सुरेश सबन को जन्म मरण डर ॥ यह बनक वृति देखी सकल भांति नहीं कछु काम की ॥ ७२ ॥ जलकी तरल तरंग जात त्योंही जातु आयु यह ॥ जोबन हों दिन चार चटक की चोंप कांच यह ॥ ज्यों दामिन पर संगभोग सब जानहु तैसे ॥ तैसे ही यह देह अथिर है है कैसे ॥ सुनिरे मेरे चित तू होय ब्रह्म में लीन अब ॥ संतोष सत्य श्रद्धा सहित सबदम साधन साध सब ॥ ७४ ॥ ज्यों सफरी को फिरत लखि सागर करत न छोभ ॥ अंडस बृहमंड को त्यों संतन के लोभ ॥ ७५ ॥ मनुस्मृति और पुराण पढ़े बिस्तार सहित जिन ॥ कहा ग्रंथ जनही भयो तब तियदेखी सब ठौर ॥ अविवेकी अंजन

कियो लख्यो अलख सिर मोर ॥ ७६ ॥

छप्पै

चंद चांदनी रम्य रम्य वन मति पहुप जुत ॥ त्योंही अ
ति रमनीक मित्र को मिलिबो अद्भुत ॥ बनिता के मृदु
बोल महा रमनीक बिराजत ॥ माननी सुख रमनीक दृग
न अंसुवन झर सावित ॥ इक यह परम रमनीक अति
सब कोऊ चित से चहत ॥ इनको बिनास जब देखिय
त तब इन में कोऊ न रहत ॥ ७७ ॥

दोहा

उठे ज्ञति गतिमान समदृष्टी इच्छा रहि ॥ करतल पस्वी
ध्यान कथा को आसन कीये ॥ ७८ ॥ अरी मेदनी मात ता
त मारुत सुन येरे ॥ तेज सखा जल भ्राता व्योम बंधु
सनि मेरे ॥ तुम को करत प्रनाम हात तुम आगे जोरत ॥
तुम हमेरे हो मित्र शत्रुन को सिंधु कामरत ॥ अज्ञान
ज्ञान तब मोह हू मिटियो तिह्नारे संगते ॥ आनन्द अ
खंडा नंद का छाय रह्यो रस रंगते ॥ ७९ ॥
जोलों देह निरोग जोलों निजराठन ॥ अरु तोलों बल
वान आपु उरई मिनके गन ॥ तोलों निज कल्लान करस
कोजतन बिचारत ॥ वह पंडित वह धीर बीर ज्यों प्र
थम समारथ ॥ फिर होत कहा जरजर भये जपतपसज
मनहिं बनत ॥ भाभ काय उठायो निज भवन में तवक्यों
कर कूपहि षिनत ॥ ८० ॥

दोहा

विद्या पढ़ी न पद लख्यो लख्यो न नारि समोह ॥ यह जोब
न योंही गयो ज्यों सून्य रह को दीय ॥

(छप्पै)

मनके मनही मांय मनोरथ वृद्ध भये सब ॥ निज अंगन में आस भयी जब जावन हो अब ॥ विद्या की गई व्यांज बूरु वारे नहिं दीसन ॥ दोरे आवत काल कोप कर दस नन पीसन ॥ कबू न पूजे प्रीति सों चक्र पानि प्रभु के चरण ॥ भव बंधन काटै कौन अजहूं गहेरे हरि सरन ॥ ८२ ॥ नर सेवा तजि ब्रह्म भज गुरु चरनन चितलाय ॥ कब गंगा तट ध्यान धरि पूजों गो शिव पाय ॥ ८२ ॥ पंकज नयनी शशि मुखी सब कबि कहत पुकारि ॥ ताकों हम ऐसे कहत हाड़ मांस भय नारि ॥ ८४ ॥

छप्पै

और काम बे काम धनुष टंकार करत जत ॥ तूह कोकिल व्यर्थ वृथा काहे को गुंजत ॥ तैसे ही तू नारि वृथा ही करत कुठांछे ॥ मोहि न उपजत मोह छोह सब रहिगो पाछे ॥ चित्त अचूड़ के ध्यान को ज्ञान अन्तर बरसत इन ॥ आनन्द अखंडा नंद सों नाहि जगत सों कों कहत ८६ ॥ कथा और कोपीन महाजरजर है जिन के ॥ बैरी मित्र समान संकहु नाहिन तिनके ॥ बन समान बै भास भीख मांगे तब खावै ॥ सदा ब्रह्म में लीन पीन संतोष हि पावै ॥ यह भांति रहत धुन ध्यान में ज्ञान भान उन के उदित ॥ नित रहत अकेले एक रस वह जोगी जग में मुदित ॥ ८७ ॥ अति चंचल यह भोग जगत हू चंचल तैसा ॥ तू क्यों भटकत जीव मूढ़ संसारी तैसा ॥ आस फासी काट चित्त तू निर्मल ह्वै है ॥ साधन साध समाध परम निज पद को छैहे ॥ करि रे प्रीति मेरे वचन डोरे

रे तू इह थोरे कौ ॥ छिन इहै पहै दिन ही भयौ जिन राख्यौ कछुरौ भोर कौ ॥ ८८ ॥ जोगी जग बिसराय जाय गिर गुहा बसत हैं ॥ करत ज्योति को ध्यान प्रेम आसा बरसत हैं ॥ खग कुल बैठत अंक पियत निरसंकन पन जल ॥ धनि धनि वह धीर धरैं जिन यह समाधि बल ॥ हम सेवत वारी बाग सरि सरिता बापी कूप तट ॥ खोवत हैं योंही आप कौ भय निपट ही निघर घट ॥ ८६ ॥ असो जन्म को मित्र भरा जीवन को नास्यौ ॥ नासिब का संतोष लाभ यह प्रघट प्रकास्यौ ॥ ऐसे ही सम दृष्टि गनसलि बनिता बिलास घर ॥ मच्छर गुण नास लेत नसत बन को भुजंगवर ॥ नृप न्हसत किये इन दुरजनन की सोच्चपता धन नासति ॥ कछु इन देख्या बिना टसत याहीतें चित्त अनन्हसत ॥ ६० ॥

दोहा

रोग बियोग बिपति बहु देहु आप आधीन ॥ निडर बिधाता जग रच्यौ महा प्रथिरता लीन ॥ ६१ ॥

रच्यौ गर्भ दुख जन्म दुख जोबन तिया बियोग ॥ वृद्ध भये सब हन तनज्यौ जगत किधौं यह रोग ॥ ६२ ॥

(छप्पै)

सौ बर्षन की आयु रैन में बीतत आधी ॥ ताके आधौ आध वृद्ध बाला पन साधी ॥ रहै यहै दिन आदि व्याधि टहल काज समोये ॥ जल की तरंग बूंद बूंद सह स देह येह ह्वै जात हैं ॥ सुख कहौ कहा इन नरन कूं जासों फूलत गात हैं ॥ ६३ ॥

(दोहा)

बड़े बिवेकी तजत हैं संपति पितु अरु मात
कैथा और कोपीन हूं हमसों तजीन जात ४९

दोहा

कुपति सिंधनी ज्यों जरा कुपति शत्रु ज्यों रोग ॥ फूटे
घट जल ज्यों जगत तऊ अहित जुत लोग ॥ ९५ ॥
पढि विद्या दृढ़ होत जब सबही भांति सुछन्द ॥
तबही नर को तन हरत बड़ो बिधाना मंद ॥ ९६ ॥

छुप्पै

है हूं कछुक धनि धरी जिन धरत पीठ पर ॥ दूजो ध्रुव ह
धन सरिस सिराखत परिकर ॥ रथा जगत में जन्म जीव
निज स्वारथ साचे ॥ परमारथ के काज होत ऊंचे नहिं
नीचे ॥ यह जानत नांहि हित कर अचंभ पेट हि मरत ॥
गूलर फल से ब्रह्म मंड में मछर से उपजत मरन ॥
९७ ॥ छिन में बालक होत होत छिन ही में निरधन
॥ होत छिनक में वृद्धि देह जर जरता पावत ॥ नट ज्यों
पलटत अंग स्वर्ग नित नयो दिखावत ॥ यह जीवनी
च नाना मचत निचलो रहत न एक दम ॥ कार के
कनात संसार की कौतुक निरखत रहत जम ॥ ९८ ॥
बहुत बहुत भोग को संग तहां त्यों इन रोगन को डर ॥ ध
न हू को डर भूप अगिन अरु त्यों होत संकार ॥ सेवा
में भय स्वामि समर में सत्रुन को भय ॥ कुल हू में भय
नारि देह को काल करत छय ॥ अभिमान डरत अप
मान सों गुन डरपत सुन खल सबर ॥ सब गिरत
परत भय सों भरे अभय एक बैराग्य पद ॥ १०० ॥

(दोहा)

करी भरतरी शतक भाषा भली प्रताप ॥ नीत महल रस गोख में बीत राग प्रभु आप ॥ १०१ ॥

दोहा

श्रीराधा गोबिन्द के चरन शरन विश्राम ॥ चन्द महल चित चुहल में उदयपुर नगर सुकाम ॥ १०२ ॥

दोहा

सम्वत अष्टा दस सतक शुभ बावना वर्ष ॥ भादों कृस्ना पंचमी रच्यौ ग्रंथ करि हर्ष ॥ १०३ ॥

इति श्री मन्महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री
श्री सवाई प्रताप सिंह जी देव
विरचित भरतरी सतक
भाषा
नीति
सिंगार बैराग्य मंजरी सम्पूरणम्

(दोहा)
तुलसी बिलम्ब न कीजिये भजिलीजे रघुबीर
तन तरकस सों जात है स्वांस सार से तीर
शुभं

हस्ताक्षर श्रीराम शर्मा गोपालपुरा निवासी